अथाष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥१॥

—ऋ० मं० १०। सू० १२९। मं० ७॥

तम आसीत्तमसा गूळमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥२॥

—ऋ० मं०। सू०। मं०॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

—ऋ० मं० १०। सू० १२९। मं० १॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥४॥

—यजुः अ० ३१। मं० २॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥ ५॥

—तैत्तिरीयोपनि०।

हे (अङ्ग) मनुष्य! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकर्त्ता है जो इस जगत् का स्वामी है जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उस को तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान॥ १॥

यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया॥ २॥

हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था। और जिस ने पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें॥ ३॥

हे मनुष्यो! जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीव का स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है; वही पुरुष इस सब भूत भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् का बनाने वाला है॥ ४॥

जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिस से जीते और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं; वह ब्रह्म है। उस के जानने की इच्छा करो॥ ५॥

जन्माद्यस्य यतः॥ —शारीरक सू० अ० १। सूत्र० २॥

जिस से इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है; वही ब्रह्म जानने योग्य है।

(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से?

(उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

(प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?

(उत्तर) नहीं। वह अनादि है।

(प्रश्न) अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं?

(उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।

(प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है।

(उत्तर)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥१॥

—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० २०॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥ —यजु:० अ० ४०। मं० ८॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं (तयोरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप; तीनों अनादि हैं॥ १॥

(शाश्वती०) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है॥ २॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

यह उपनिषत् का वचन है।

प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिन का जन्म कभी नहीं होता और न कभी जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इन का कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उस में परमात्मा न फंसता और न उस का भोग करता है।

ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषय में कह आये। अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ —साङ्ख्यसूत्र॥

(सत्त्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उस का नाम प्रकृति है। उस से महत्तत्त्व बुद्धि, उस से अहङ्कार, उस से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर हैं। इन में से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्त्व अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य्य है।

(प्रश्न) सदेव सोम्येदमग्र आसीत्॥ १॥ असद्वा इदमग्र आसीत्॥ २॥ आत्मा वा इदमग्र आसीत्॥ ३॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्॥ ४॥
ये उपनिषदों के वचन हैं।

हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत्। १। असत्। २। आत्मा। ३। और ब्रह्मरूप था॥ ४॥ पश्चात्—

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति॥ १॥
सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति॥ २॥ —यह तैत्तिरीयोपनिषत् का वचन है।
वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है॥ १। २॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ —यह भी उपनिषत् का वचन है।

जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उस में दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप हैं।

(उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में—

अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥ —छान्दोग्य उपनि०॥

हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य्य से जलरूप मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उस को जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था; अभाव न था और जो (सर्वं खलु०) यह वचन ऐसा है जैसा कि 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवाँ जोड़ा' ऐसी लीला का है। क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। —छान्दोग्य॥

और—

नेह नानास्ति किञ्चन॥ —यह कठवल्ली का वचन है॥

जैसे शरीर के अङ्ग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के

और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं। सुनो! इस का अर्थ यह है—हे जीव! तू उस ब्रह्म की उपासना कर। जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है; जिस के बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सहचरित है; उस को छोड़कर दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मस्वरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु ये सब पृथक्-पृथक् स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं।

(प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं?

(उत्तर) तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। **निमित्त कारण** उस को कहते हैं कि जिस के बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं; दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा **उपादान कारण** उस को कहते हैं जिस के विना कुछ न बने; वही अवस्थान्तर रूप होके बने बिगड़े भी। तीसरा **साधारण कारण** उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो प्रकार के होते हैं। एक—सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण **परमात्मा**। दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्य्यान्तर बनाने बनाने वाला साधारण निमित्त कारण **जीव**।

उपादान कारण—प्रकृति, परमाणु जिस को सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। **कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है।**

जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन-जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण। जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त; मिट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

(प्रश्न) नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च। —यह उपनिषत् का वचन है।

जैसे मकड़ी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उस में खेलती है वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार हो जाऊँ; सङ्कल्पमात्र से सब जगद्रूप बन गया। क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥

यह माण्डूक्योपनिषत् पर कारिका है।

जो प्रथम न हो, अन्त में न रहै, वह वर्त्तमान में भी नहीं है। किन्तु सृष्टि की आदि में जगत् न था ब्रह्म था। प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा तो वर्त्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं?

(उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे और उपादान कारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः॥ —वैशेषिक सूत्र॥

उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप; जगत् कार्य्यरूप से असत्, जड़ और आनन्दरहित; ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है। ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है। जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादि कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य्य भी चेतन होना चाहिए।

और जो मकड़ी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है। और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है। क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बना कर बाहर स्थूलरूप कर आप उसी में व्यापक होके होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है।

और जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से सह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्तजीवों को छोड़ के उस को कोई नहीं जानता।

और जो वह कारिका है वह भ्रममूलक है। क्योंकि प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी वार सृष्टि न होगी तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध है। क्योंकि—

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळमग्रे॑ ॥१॥ ऋग्वेद का वचन है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ २॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से आवृत आच्छादित था। और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा। किन्तु वर्त्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है। पुनः उस कारिकाकार ने वर्त्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है। क्योंकि जिस को प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

(प्रश्न) जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है?

(उत्तर) नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है?

(प्रश्न) जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता।

(उत्तर) यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं पुरुषार्थी की नहीं और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है? जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता और बहुत से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं। प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के किये पाप पुण्य कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्यों कर भोग सकते?

जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे देखना तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उस का क्या प्रयोजन; विना जगत् की उत्पत्ति करने के ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे। और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे। उस का अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

(प्रश्न) बीज पहले है वा वृक्ष?

(उत्तर) बीज। क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता?

(उत्तर) सर्वशक्तिमान् का अर्थ पूर्व लिख आये हैं परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके? जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारण के विना कार्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त; जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। **जैसे आप जड़ नहीं हो सकता वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता।**

और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा विना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता?

(उत्तर) ईश्वर निराकार है। जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर ही नहीं। क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश काल वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। उस में जीव के विना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इस से त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते और न

उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़ कर स्थूल बना सकते हैं। वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता।

जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रियगोलक हस्त पादादि अवयवों से रहित है परन्तु उस की अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं उन से सब काम करता है। जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उन में व्यापक है तभी उन को पकड़ कर जगदाकार कर देता है। **और सर्वगत होने से सब का धारण और प्रलय भी कर सकता है।**

(प्रश्न) जैसे मनुष्यादि के मां बाप साकार हैं उन का सन्तान भी साकार होता है। जो ये निराकार होते तो इनके लड़के भी निराकार होते। वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उस का बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

(उत्तर) यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है। क्योंकि हम अभी यह कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है। और वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

(प्रश्न) क्या कारण के विना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जिस का अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है उस का भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई गपोड़ा हांक दे कि मैंने वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा। वह नरशृङ्ग का धनुष और दोनों खपुष्प की माला पहिरे हुए थे। मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर में रहते थे। वहां बद्दल के विना वर्षा; पृथिवी के विना सब अन्नों की उत्पत्ति आदि होती थी। वैसा ही कारण के विना कार्य का होना असम्भव है।

जैसे कोई कहे कि **'मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च ।'** अर्थात् मेरे माता-पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं। मेरे मुख में जीभ नहीं है परन्तु बोलता हूं। बिल में सर्प न था निकल आया। मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं। ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है।

(प्रश्न) जो कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है ?

(उत्तर) जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य होता है वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य होता है। परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है वह अनादि है।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्॥ —सांख्य सू०॥

मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इस से अकारण सब कार्य्यों का कारण होता है। क्योंकि किसी कार्य्य के आरम्भ समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं। जैसे कपड़े बनाने के पूर्व तन्तुवाय, रुई का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्त्तमान होने से वस्त्र बनता है वैसे जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इन में से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

अत्र नास्तिका आहुः–

शून्यं तत्त्वं भावोऽपि नश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य॥ १॥ –सांख्य सू०॥

अभावात् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्॥ २॥

ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्॥ ३॥

अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्॥ ४॥

सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात्॥ ५॥

सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात्॥ ६॥

सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात्॥ ७॥

सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः॥ ८॥

–न्यायसू०। अ० ४। आह्नि० १॥

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि १–शून्य ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा क्योंकि जो भाव है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है उस का अभाव होकर शून्य हो जायेगा।

(उत्तर) शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और विन्दु को भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ। इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक विन्दु से रेखा, रेखाओं से वर्तुलाकार होने से भूमि पर्वतादि ईश्वर की रचना से बनते हैं और शून्य का जानने वाला शून्य नहीं होता॥ १॥

दूसरा नास्तिक–अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है। जैसे बीज का मर्दन किये विना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर देखें तो अंकुर का अभाव है। जब प्रथम अंकुर नहीं दीखता था तो अभाव से उत्पत्ति हुई।

(उत्तर) जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज में था। जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता॥ २॥

तीसरा नास्तिक–कहता है कि कर्मों का फल पुरुष के कर्म करने से नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल दीखने में आते हैं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के आधीन है। जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहै देता है। जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता नहीं देता। इस बात से कर्मफल ईश्वराधीन है।

(उत्तर) जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है। इस से ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता। किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है॥ ३॥

चौथा नास्तिक–कहता है कि विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है। जैसा बबूल आदि वृक्षों के कांटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं। इससे विदित होता है कि जब-जब सृष्टि का आरम्भ होता है तब-तब शरीरादि पदार्थ विना निमित्त के होते हैं।

(उत्तर) जिस से पदार्थ उत्पन्न होता है वही उस का निमित्त है। विना कण्टकी वृक्ष के कांटे उत्पन्न क्यों नहीं होते?॥ ४॥

पांचवां नास्तिक–कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है।

नवीन वेदान्तीलोग **पांचवें नास्तिक** की कोटी में हैं। क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है–'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं।'

(उत्तर) जो सब की नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकता।

(प्रश्न) सब की नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठों को नष्ट कर आप भी नष्ट हो जाता है।

(उत्तर) जो यथावत् उपलब्ध होता है उस का वर्त्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता। जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उस का कार्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो स्वप्न रज्जू सर्प्पादिवत् कल्पित कहैं तो भी नहीं बन सकता। क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य और गुण द्रव्य से पृथक् नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिए, नहीं तो उस को भी अनित्य मानो।

जैसे स्वप्न विना देखे सुने कभी नहीं आता। जो जागृत अर्थात् वर्त्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उन का वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है; स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुषुप्ति होने से बाह्य पदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्त्तमान रहता है। जो संस्कार के विना स्वप्न होवे तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे। इसलिये वहां उन का ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्त्तमान हैं।

(प्रश्न) जैसे जागृत के पदार्थ स्वप्न और दोनों के सुषुप्ति में अनित्य हो जाते हैं वैसे जागृत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना चाहिये।

(उत्तर) ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है; अभाव नहीं। जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता; वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म जीव और जगत् का कारण अनादि नित्य हैं, वही सत्य है॥ ५॥

छठा नास्तिक–कहता है कि पांच भूतों के नित्य होने से जगत् नित्य है।

(उत्तर) यह बात सत्य नहीं। क्योंकि जिन पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घट पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं। इस से कार्य को नित्य नहीं मान सकते॥ ६॥

सातवां नास्तिक–कहता है कि सब पृथक्-पृथक् हैं। कोई एक पदार्थ नहीं है। जिस-जिस पदार्थ को हम देखते हैं कि उन में दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता।

अवयवों में अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक्-पृथक् पदार्थ समूहों में एक-एक हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये

सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं और पृथक्-पृथक् पदार्थों में एक पदार्थ भी है॥ ७॥

आठवां नास्तिक—कहता है कि सब पदार्थों में इतरेतर अभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं जैसे **'अनश्वो गौः। अगौरश्वः'** गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं। इसलिये सब को अभावरूप मानना चाहिए।

(उत्तर) सब पदार्थों में इतरेतराभाव का योग हो परन्तु **'गवि गौरश्वेऽश्वो भावरूपो वर्तत एव'** गाय में गाय और घोड़े में घोड़े का भाव ही है; अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थों का भाव न हो तो इतरेतराभाव भी किस में कहा जावे? ॥८ ॥

नववां नास्तिक—कहता है कि स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं। और बीज पृथिवी जल के मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्र वायु के योग से तरङ्ग और तरङ्गों से समुद्रफेन; हल्दी, चूना और नींबू के रस मिलाने से रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।

(उत्तर) जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वभाव से मानो तो उत्पत्ति न होगी। और जो दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश मानोगे तो 'निमित्त' से उत्पत्ति और विनाश होने वाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो एक समय ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल, चन्द्र, सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते?

और जिस-जिस के योग से जो-जो उत्पन्न होता है वह-वह ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न, जलादि के संयोग से घास, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं; विना उन के नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नीबू का रस दूर-दूर देश से आकर आप नहीं मिलते; किसी के मिलाने से मिलते हैं। उस में भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है। अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं बनती। वैसे ही प्रकृति परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये वि ना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, परमेश्वर की रचना से होती है॥ ९॥

(प्रश्न) इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इस की उत्पत्ति हुई; न कभी विनाश होगा।

(उत्तर) विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है; वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इस को न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण हीरा और पोलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इन में परमाणु पृथक्-पृथक् मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग-अलग भी अवश्य होते हैं॥ १०॥

(प्रश्न) अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य

को प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है।

(उत्तर) जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता?

जीव चाहै जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है; जिस में अनन्त सिद्धि है; उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता।

देखो! कोई भी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसा अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है इस को कोई भी योगी बदल नहीं सकता। जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

(प्रश्न) कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है अथवा एक सी?

(उत्तर) जैसी कि अब है वैसी पहले थी और आगे होगी; भेद नहीं करता।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

—ऋ० मं० १०। सू० १९०। मं० ३॥

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाता था। वैसे ही अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा॥ १ ॥ इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिस का ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल चूक होती है; ईश्वर के काम में नहीं।

(प्रश्न) सृष्टि-विषय में वेदादि शास्त्रों का अविरोध है वा विरोध?

(उत्तर) अविरोध है।

(प्रश्न) जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ —यह तैत्तिरीय उपनिषत् का वचन है।

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उस को इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें?

आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। यहां आकाशादि क्रम से और छान्दोग्य

में अग्न्यादि; ऐतरेय में जलादि क्रम से सृष्टि हुई। वेदों में कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से मीमांसा में कर्म, वैशेषिक काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ, सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किस को सच्चा और किस को झूठा मानें?

(उत्तर) इस में सब सच्चे कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है। क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उस के पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है; अग्न्यादि-क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल-क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहां-जहां तक प्रलय होता है; वहां-वहां से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं; वे सब नाम परमेश्वर के हैं। परन्तु विरोध उस को कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है—

मीमांसा में—'ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिस के बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय'। वैशेषिक में—'समय न लगे विना बने ही नहीं'। न्याय में—'उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता'। योग में—'विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता'। सांख्य में—'तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता'। और वेदान्त में—'बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न हो न सके'। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं?

जैसे छः पुरुष मिल के एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरैं वैसा ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है। जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उन से पूछा कि हाथी कैसा है? उन में से एक ने कहा—खम्भे, दूसरे ने कहा—सूप, तीसरे ने कहा—मूसल, चौथे ने कहा—झाड़ू, पांचवें ने कहा—चौतरा और छठे ने कहा—काला-काला चार खम्भों के ऊपर कुछ भैंसा सा आकार वाला है।

इसी प्रकार आज कल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इन का कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आज कल के अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने वाली है।

(प्रश्न) जब कारण के विना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं?

(उत्तर) अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते? देखो! संसार में दो ही पदार्थ होते हैं—एक कारण दूसरा कार्य। जो कारण है वह कार्य्य नहीं और जिस समय कार्य्य है वह कारण नहीं। जब तक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता तब तक उस को यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषाद-

वस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते॥

अनादि नित्य स्वरूप सत्त्व, रजस् और तमो गुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक्-पृथक् तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है; संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते बनाते विचित्ररूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है। भला जो प्रथम संयोग में मिलने और मिलाने वाला पदार्थ है; जो संयोग का आदि और वियोग का अन्त अर्थात् जिस का विभाग नहीं हो सकता उस को कारण और जो संयोग के पीछे बनता और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य्य कहाता है। जो उस कारण का कारण, कार्य का कार्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन और साध्य का साध्य कहाता है; वह देखता अन्धा, सुनता बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है। जो जिस से उत्पन्न होता है वह कारण और जो उत्पन्न होता है वह कार्य्य और जो कारण को कार्यरूप बनानेहारा है वह कर्त्ता कहाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ भगवद्गीता॥

कभी असत् का भाव वर्त्तमान और सत् का अभाव अवर्त्तमान नहीं होता। इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है। अन्य पक्षपाती आग्रही मलीनात्मा अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जो मनुष्य, विद्वान्, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य वे पुरुष हैं जो कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिए परिश्रम करते हैं। जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। इस से जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता।

जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उस की प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उस का नाम महत्तत्त्व और जो उस से कुछ स्थूल होता है उस का नाम अहङ्कार और अहङ्कार से भिन्न-भिन्न पांच सूक्ष्मभूत; **श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियां; वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, और गुदा ये पांच कर्म-इन्द्रियां हैं** और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिन को हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं। उन से नाना प्रकार की ओषधियां, वृक्ष आदि; उन से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बना कर उन में जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिस को विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़; नाड़ियों का बन्धन; मांस का लेपन; चमड़ी का ढक्कन; प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन; रुधिरशोधन, प्रचालन; विद्युत् का स्थापन; जीव का संयोजन; शिरोरूप मूलरचन; लोम, नखादि का स्थापन; आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन; इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन; जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण; सब धातु का विभागकरण; कला, कौशल, स्थापनादि

अद्‌भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है?

इसके विना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि; विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र; पुष्प, फल, मूलनिर्माण; मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस; सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन; अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण; धारण; भ्रामण; नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता।

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उनमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है। जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया। देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

(प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदि की?

(उत्तर) पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या?

(उत्तर) अनेक। क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उन का जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। क्योंकि **'मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त'** यह यजुर्वेद में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए । और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माँ बाप के सन्तान हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में?

(उत्तर) युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

(प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि; अनादि काल से चक्र चला आता है। इस का आदि वा अन्त नहीं किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता, कभी कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता। ऐसे व्यवहारों को **प्रवाहरूप** जानना चाहिए। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उस के कर्त्तव्य कर्मों

का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म; किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म; किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु; किन्हीं को वृक्षादि, कृमि, कीट, पतङ्गादि जन्म दिये हैं। इस से परमात्मा में पक्षपात आता है।

(उत्तर) पक्षपात नहीं आता। क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म के विना जन्म देता तो पक्षपात आता।

(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई?

(उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिस को 'तिब्बत' कहते हैं।

(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक?

(उत्तर) एक मनुष्य जाति थी। पश्चात् **'विजा॑नी॒ह्यार्य्या॒न्ये च॒ दस्य॑वः'** यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् देव और दुष्टों के **दस्यु** अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। **'उ॒त शू॒द्रे उ॒तार्ये'** वेद-वचन। आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

(प्रश्न) फिर वे यहाँ कैसे आये?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर, उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से देश का नाम **'आर्यावर्त्त'** हुआ।

(प्रश्न) आर्यावर्त्त की अवधि कहां तक है?

(उत्तर) **आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।**
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ १॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते॥ २॥ मनु०।

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र॥ १॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिस को ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है। हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सब को आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है।

(प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इस में कौन बसते थे?

(उत्तर) इस के पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

(प्रश्न) कोई कहते हैं कि ये लोग ईरान से आये। इसी से इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इन के पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिन को असुर

और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उन का जब संग्राम हुआ उसका नाम देवासुर संग्राम कथाओं में ठहराया।

(उत्तर) यह बात सर्वथा झूठ है। क्योंकि–

वि जा॑नीह्यार्या॒न्ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान् ॥

–ऋ० मं० १। सू० ५१। मं० ८॥

उ॒त शू॒द्रे उ॒तार्ये ॥ –यह भी वेद का प्रमाण है।

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इन से विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है।

जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते और देवासुर संग्राम में आर्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि; हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध हुआ था; उस में देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। इस से यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब-जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तब-तब यहां के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहायक होते थे। और श्रीरामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है। उस का नाम देवासुर संग्राम नहीं है किन्तु उस को राम-रावण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं।

किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जङ्गलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? और–

आर्यवाचो म्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ १॥
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ २॥ मनु०॥

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे **दस्युदेश** और **म्लेच्छदेश** कहाते हैं। इस से भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम **दस्यु** और **म्लेच्छ** तथा **असुर** है और नैर्ऋत, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त्त देश से भिन्न रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस है।

अब भी देख लो! हबशी लोगों का स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसों का वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है और आर्य्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहने वालों का नाम नाग और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है और उन के नागवंशी अर्थात् नाग नाम वाले पुरुष के वंश के राजा होते थे। उसी की उलोपी राजकन्या से अजुर्न का विवाह हुआ था अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाण्डव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्य्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहा।

इस में यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश इनके स्वायम्भुवादि सात राजा और उन के सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्त्त के प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त्त बसाया है।

अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। **कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।** परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

(प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

(उत्तर) एक अर्ब, छानवें क्रोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इस का स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका[१] में लिखा है देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में हैं और यह भी है कि सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उस का नाम परमाणु, **साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पांच द्व्यणुक की पृथिवी अर्थात् तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उस का दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं।** इसी प्रकार क्रम से मिला कर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।

(प्रश्न) इस का धारण कौन करता है। कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फण वाले सर्प्प के शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि बैल के सींग पर, तीसरा कहता है कि किसी पर नहीं, चौथा कहता है कि वायु के आधार, पांचवां कहता है सूर्य के आकर्षण से खैंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है इत्यादि में किस बात को सत्य मानें?

(उत्तर) जो शेष, सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है उस को पूछना चाहिये कि सर्प्प और बैल के मां बाप के जन्म समय किस पर थी? तथा सर्प्प और बैल आदि किस पर हैं? बैल वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे। परन्तु सर्प्प वाले कहेंगे कि सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर, वायु आकाश में ठहरा है। उन से पूछना चाहिये कि सब किस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर। जब उन से कोई पूछेगा कि शेष और बैल किस का बच्चा है? कहेंगे **शेष** कश्यप कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची,

---

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय को देखो ।

मरीची मनु, मनु विराट्, विराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म ही नहीं हुआ था उसके पहले पांच पीढ़ी हो चुकी हैं तब किस ने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी? तो 'तेरी चुप मेरी भी चुप' और लड़ने लग जायेंगे।

इस का सच्चा अभिप्राय यह है कि जो 'बाकी' रहता है उस को शेष कहते हैं। सो किसी कवि ने **'शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्'** ऐसा कहा कि शेष के आधार पृथिवी है। दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझ कर सर्प्प की मिथ्या कल्पना कर ली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक् रहता है इसी से उस को 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है—

सत्येनोत्तभिता भूमिः ॥ यह ऋग्वेद का वचन है।

(सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब लोकों का धारण किया है।

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ यह भी ऋग्वेद का वचन है।

इसी (उक्षा) शब्द को देख कर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा। क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आवेगा? इसलिये **उक्षा** वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से **सूर्य्य** का नाम है। उस ने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्य्यादि का धारण करने वाला विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है।

(प्रश्न) इतने-इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

(उत्तर) जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् **'विभूः प्रजासु'** यह यजुर्वेद का वचन है—वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सब का धारण कर रहा है। जो वह ईसाई मुसलमान पुराणियों के कथनानुसार विभू न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता क्योंकि विना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता।

कोई कहै कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारित होंगे पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है? उन को यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त? जो अनन्त कहैं तो आकार वाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहैं तो उन के पर भाग सीमा अर्थात् जिस के परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है वहां किस के आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम वन रखते हैं तो **समष्टि** कहाता है और एक-एक वृक्षादि को भिन्न-भिन्न गणना करें तो **व्यष्टि** कहाता है। वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिन कर जगत् कहैं तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इसलिए जो सब जगत् को रचता है वही—

स दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ यह यजुर्वेद का वचन है।

जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकालोकान्तर पदार्थ तथा सूर्य्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थों का रचन धारण परमात्मा करता है। जो सब में व्यापक हो रहा है, वही सब जगत् का कर्त्ता और धारण करने वाला है।

(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर?

(उत्तर) घूमते हैं।

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

—यजुः० अ० ३। मं० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

—यजुः० अ० ३३। मं० ४३॥

जो सविता अर्थात् सूर्य्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्त्तमान; सब प्राणी अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान् द्रव्यों को दिखलाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान; अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य्य प्रकाशक और दूसरे सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य हैं। जैसे—

दिवि सोमो अधि श्रितः॥ —अथर्व० कां० १४। अनु० १। मं० १॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, सन्ध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं। क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) है। यह पृथिवी से लाखों गुणा बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होते हैं; सूर्य के घूमने

से नहीं।

जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता।

और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे-नीचे चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जम्बूद्वीप में बतलाते हैं वे तो गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं। क्यों? जो नीचे-नीचे चली जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्न स्थलों में रहने वालों को वायु का स्पर्श न होता। नीचे वालों को अधिक होता और एक सी वायु की गति होती। दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता है। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र, और अनेक चन्द्र, अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

(प्रश्न) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं?

(उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदꣳसर्वं वसुहितमेते हीदꣳसर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥ —शत० का० १४॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इन का वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती हैं और ये ही सब को वसाते हैं। जिस लिये वास के निवास करने के घर हैं इसलिये इन का नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उन में इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

(प्रश्न) जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव हैं वैसे ही अन्य लोकों में होगी वा विपरीत?

(उत्तर) कुछ-कुछ आकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस देश में चीने, हबशी और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग रूप आकृति का भी थोड़ा-थोड़ा भेद होता है इसी प्रकार लोकलोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस-जिस शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अङ्ग हैं उसी-उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ —ऋ० मं० १०। सू० १९०॥

धाता परमात्मा (ने) जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्वकल्प में रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरों में भी बनाये गये हैं। भेद किञ्चित्मात्र

नहीं होता।

(प्रश्न) जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं?

(उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एक सी है।

(प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए?

(उत्तर) जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब का यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हों? इसलिए जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं। वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का कर्त्ता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषय में लिखा जायेगा। यह आठवां समुल्लास पूरा हुआ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषये
अष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ८॥